अध्याय - 3

ग्रामीण जीवन और समाज
(अंग्रेजी शासन और भारत के गांव)

पिछले अध्याय में आपने यह जाना कि किस तरह एक व्यापारिक कंपनी ने भारत में अपना राज कायम किया। आपने यह भी जाना कि इसका एक मात्र उद्देश्य व्यापारिक लाभ प्राप्त करना था। इस लाभ के लिए ही अंग्रेजों ने भाुरुआत में तो भारतीय राज्यों को अपने अधिकार में लिया और आगे चलकर ऐसे नियम–कानून बनाये, ऐसी व्यवस्थायें लागू की जो उनके भाासन और उनके लाभ को लगातार बढ़ाती रहे। इन सभी बातों को आप आगे के अध्यायों में पढ़ेंगे। वर्तमान पाठ में आप इस बात को जानेंगे कि अंग्रेजों के भाासन का प्रभाव भारतीय गाँवों पर किस प्रकार पड़ा।

अंग्रेजी शासन के पहले के भारतीय गाँव – हमेशा से ही भारत की अधिकांश आबादी गावों में रहती आयी है और आज भी कुल आबादी का 68 प्रतिशत भाग गाँवों में ही रहती है। इसका अर्थ यह है कि भारत की अर्थव्यवस्था गाँवों पर ही आधारित थी। गाँवों के लोगों की मेहनत और श्रम से बड़े–बड़े राज्यों और साम्राज्यों का निर्माण हुआ। वहाँ रहने वाले किसानों के कठोर श्रम से प्राप्त आय से ही यह देश आत्मनिर्भर और सम्पन्न था। ज्यादातर गाँवों में सभी तरह के काम करने वाले लोग रहते थे जो उन गाँवों की जरूरतों को पूरा करते थे। उस समय जमींदारों का एक प्रभावशाली वर्ग भी गाँवों में रहता था जिनके पास राजा द्वारा दी गई काफी जमीन होती थी। वे ही गाँवों से लगान (कृषि उपज पर राजा द्वारा किसानों से लिया जाने वाला कर) की वसूली करते थे। इस के एवज में या फिर राज्य के अन्य कामों को देखने के एवज में इन्हें जमीनें मिलती थीं।

उस समय गाँवों के लोग अपनी आवश्यकता की ज्यादातर चीजों का उत्पादन एवं निर्माण स्वयं करते थे। यहाँ की अधिकांश आबादी का मुख्य काम कृषि था। खेती के लिए जमीन उन्हें राजा से मिलती थी इसी के बदले लगान लिया जाता था। समूची जमीन का मालिक राजा ही होता था। जमींदार एवं किसानों का भूमि पर अधिकार तभी तक रहता जब

©BSTBPC WEB COPY NOT TO BE REPUBLISHED

तक राज्य को लगान मिलता रहता था। ऐसा नहीं होने पर तुरंत ही राजा द्वारा जमीन छीन ली जाती थी।

गाँवों में लोग प्रायः मिलजुलकर सहयोग से रहते थे। छोटे–मोटे झगड़ों का समाधान भी आपस में ही हो जाता था। राजा का या उसके अधिकारियों का गाँवों में ज्यादा दखल नहीं रहता था। बस वे निर्धारित लगान वसूला करते थे। राज्य अपने कर्मचारियों और जमींदारों के माध्यम से किसानों का पूरा ध्यान रखता था। वह जानता था कि अगर इन किसानों द्वारा खेती का काम बन्द कर दिया जाएगा तो उसकी आमदनी कम हो जायेगी। यहीं से उनके लिए खर्च हेतु पैसा, व्यापारियों के लिए वस्तु एवं सेना पुलिस तथा अन्य कर्मचारियों के लिए भोजन आदि का प्रबंध होता था। इस तरह गाँव ही किसी भी भाासन की आमदनी का मुख्य स्रोत था इसलिए अंग्रेजी सरकार ने भी सबसे पहले गाँवों पर ही ध्यान दिया और उस पर अपना नियंत्रण स्थापित करने की सोची।

अंग्रेजों को लगान वसूली का अधिकार मिला– पिछले अध्याय में आप ने यह जाना कि किस तरह अंग्रेजों को भारत के एक बड़े और समृद्ध क्षेत्र (बंगाल, बिहार, उड़ीसा) से लगान वसूली का अधिकार मिल गया। इससे भारत से व्यापार के लिए चीजें खरीदने के लिए अपने देश से धन लाने की उनकी समस्या का समाधान हो गया लेकिन अब भारत में कई और तरह के खर्च उनके सामने आ गए। इनमें सबसे प्रमुख अपने अधिकार में आए इलाकों के प्रशासन का खर्च था। दूसरे, उन्हें अपने साम्राज्य की वृद्धि के लिए लगातार युद्ध करना पड़ रहा था उसका खर्च था। इन सभी खर्चों को पूरा करने के लिए उनके पास आमदनी का एक ही स्रोत था। वह था बंगाल की लगान वसूली में होने वाला मुनाफा। लगान वसूली के लिए शुरू में तो उन्होंने पहले से चली आ रही व्यवस्था को ही बनाए रखा। इसके लिए शुरुआत में वे पहले से विद्यमान जमींदारों से ही काम लेते रहे। लेकिन ऐसा ज्यादा दिनों तक नहीं चला।

ज्यादा से ज्यादा लाभ प्राप्त करने की इच्छुक अंग्रेजी सरकार वर्तमान व्यवस्था से प्राप्त होने वाले आय से संतुष्ट नहीं थी। इसके लिए आगे चलकर उन्होंने लगान वसूली के अधिकार की नीलामी करनी भाुरू की। जो व्यक्ति किसी खास इलाके से ज्यादा लगान वसूल

करने की बोली लगाता उसे लगान वसूलने का अधिकार दे दिया जाता। इसे आप ठेकेदारी व्यवस्था कह सकते हैं। परंतु यह व्यवस्था ज्यादा दिनों तक नहीं चल पायी। इस व्यवस्था में ठेकेदारों को फायदा हो रहा था। वे तय राशि से जितना ज्यादा वसूल करते वह उनका ही हो जाता था।

चित्र 1 – अंग्रेजो के समय का गाँव

किसानों के लिए भी यह तरीका बहुत हानिकारक था क्योंकि उन्हें यह पता ही नहीं होता कि किस साल उन्हें कितना लगान देना है। दूसरे, ठेकेदारों का ध्यान केवल पैसा वसूली पर होता था, कृषि का उत्पादन या किसानों की आय कैसे बढ़े, इसकी चिंता उन्हें नहीं होती थी। कंपनी सरकार के लिए भी यह एक समस्या थी। उन्हें व्यापार के लिए एक निश्चित धनराशि निश्चित समय पर चाहिये था मगर इस व्यवस्था से उन्हें यह पता नहीं चल पाता था कि अगले वर्ष उन्हें कितनी आमदनी होने वाली है। उन्होंने कुछ वर्षों तक इस व्यवस्था को चलाए रखा। लेकिन वे एक ऐसी व्यवस्था चाहते थे जिससे उन्हें ज्यादा से ज्यादा एवं नियमित धन लगान के रूप में प्राप्त होता रहे।

कल्पना करें लगान वसूली का अधिकार मिलने से गाँवों में क्या परिवर्तन आया होगा, आपकी नजर में अब भूमि का मालिक कौन हो गया।

लगान व्यवस्था की शुरुआत– कई तरह के प्रयासों के बाद आखिर में सन् 1789 के आस पास कंपनी सरकार ने जमींदारों के साथ एक करार किया जिसके अंतर्गत उनके द्वारा कंपनी को दिया जाने वाला लगान 10 वर्षों के लिए तय कर दिया गया। यह राशि जमींदारों

WEB COPY © BSTBPC NOT TO BE PUBLISHED

द्वारा किसानों से वसूले गए लगान का 9/10 भाग तय कर दिया गया। आगे चलकर सन् 1793 में इसी राशि को हमेशा के लिए निश्चित मान लिया गया। इस राशि में भविष्य में कोई बढोत्तरी नहीं होनी थी। इसे स्थायी बंदोबस्त का नाम दिया गया। एक आकलन के अनुसार यदि किसानों की उपज को 100 माना जाए तो इस व्यवस्था के तहत अंग्रेजी सरकार को उसमें से लगभग 45 प्रतिशत हिस्सा प्राप्त होता था। जमींदार और उसके कारींदे अपने लिए करीब 15 प्रतिशत हिस्सा वसूलते थे और शेष 40 प्रतिशत किसानों के पास बचता था। अंग्रेजी सरकार ने जमींदारों से यह करार किया कि भविष्य में इस राशि में कोई परिवर्तन नहीं किया जाएगा। लेकिन जमींदारों को लगान की तय राशि नियमित तिथि को सूरज डूबने के पहले सरकारी कार्यालय में जमा करवाना अनिवार्य था। ऐसा नहीं करने पर उनकी जमींदारी नीलाम कर दी जाती थी। सरकार को इस बात की कोई परवाह नहीं थी कि अकाल या बाढ़ के कारण फसल नष्ट हो गयी है या पैदावार कम हुई है। जमींदारों को हर हाल में तय राशि नियत तिथि को जमा कराना ही था।

यह व्यवस्था बंगाल (वर्तमान बंगाल, बिहार व उड़िसा) तथा आंध्र प्रदेश के कुछ इलाकों में लागू किया गया। सन् 1790 के आस–पास तक ये ही इलाके कंपनी के अधीन थे। इस व्यवस्था के लागू होने से भारतीय ग्रामीण समाज में एक नई बात सामने आयी। जमींदार जो अब तक अपने इलाके में केवल लगान वसूल करने के अधिकारी होते थे अब जमीन के मालिक बना दिए गए। यह कंपनी सरकार के अधिकारियों की बहुत सोची समझी नीति थी। इसके बाद अगर कोई जमींदार नियत तिथि तक पूरी राशि का इन्तजाम नहीं कर पाता था तो उसके पास यह विकल्प होता था कि वह अपनी जमींदारी का कुछ हिस्सा गिरवी रख कर कर्ज ले ले और अपना भुगतान कर दे। या फिर वह अपने इलाके की कुछ जमीन बेच कर भी पैसे का इन्तजाम कर सकता था।

ऐसा करने के पीछे एक दूसरी सोच भी थी। अंग्रेज ऐसा सोचते थे कि जमीन के मालिक बन जाने से जमींदार खेती में सुधार और पैदावार बढ़ाने का प्रयास करेंगे। उनके अपने देश तथा यूरोप के अन्य देशों में कुछ ऐसी ही व्यवस्था थी। एक बात और वे भारत में

©BSTBPC WEB COPY NOT TO BE PUBLISHED

अपने शासन को मजबूत बनाने के लिए भारतीय लोगों में से ही अपने लिए एक समर्थक समूह तैयार करना चाहते थे। एक ऐसा समूह जो अपना अस्तित्व अंग्रेजों के यहां बने रहने में देखता हो। इसके लिए जमींदारों से बेहतर समूह उनके लिए और कोई नहीं हो सकता था। इन लोगों का अपने इलाके के गाँवों पर काफी प्रभाव होता था और इनके माध्यम से अंग्रेजों के लिए भारतीय गाँवों पर नियंत्रण कर पाना भी काफी आसान था। आगे चल कर अंग्रेजी सरकार की यह नीति काफी सफल सिद्ध हुई। बीसवीं सदी में जब उनके खिलाफ आंदोलन भाुरू हुए तो इस वर्ग के अधिकांश लोगों ने उनका साथ दिया।

मगर इस व्यवस्था की सबसे बड़ी खामी यह थी कि सरकार ने जमींदारों से उन्हें दी गई जमीन के बदले कितनी लगान ली जानी थी यह तो तय कर दिया लेकिन किसानों से जमींदार कितना वसूलेंगे यह तय नहीं किया। इसका प्रभाव यह पड़ा कि कई जमींदार जरूरत से ज्यादा पैसा किसानों से वसूल करते थे जिससे किसानों पर कर का बोझ काफी बढ़ गया। दूसरे, समय पर लगान न चुका पाने के कारण कई पुराने जमींदार जो अपने किसानों से बलपूर्वक लगान वसूल नहीं करते थे उनकी जमींदारी चली गई और उनकी जगह ऐसे लोगों ने ले ली जिन्हें किसानों व गाँवों के हित से कोई मतलब नहीं था। कई जमींदार कर्ज के बोझ से दब गए और धीरे–धीरे उनकी जमींदारी महाजनों व व्यापारियों के हाथ चली गई।

इस व्यवस्था के लागू होने से कंपनी सरकार की समस्या थोड़े दिनों के लिए समाप्त हो गयी। लेकिन सन् 1815–20 तक उनके अधीन कई और इलाके आ गए और वहां के लिए भी कोई लगान व्यवस्था तय करनी थी। स्थायी व्यवस्था के लागू होने के समय से कंपनी के अधिकारियों में दो मत थे। एक मत तो इसके पक्ष में था जबकि दूसरे मत वाले लोगों को यह लगता था कि इससे कंपनी सरकार को नुकसान हो रहा है। वो चाहते थे कि सरकार को कुछ वर्षों बाद लगान राशि को बढ़ाने का अधिकार अपने पास रखना चाहिए था। उनका मानना था कि सरकार का खर्च लगातार बढ़ता जायेगा और इसे पूरा करने का कोई और

रास्ता नहीं है। दूसरी ओर अधिकारियों को यह भी समझ में आने लगा था कि इस व्यवस्था में सबसे ज्यादा फायदा जमींदारों को हो रहा था। उन्हें बगैर कुछ किये ही अच्छा धन मिल रहा था। तो उनके विचार से क्यों नहीं सीधा किसानों से ही संपर्क किया जाए। इस विचारधारा के पीछे एक अंग्रेज अर्थशास्त्री रिकार्डो की सोच का बड़ा हाथ था। अब जब कुछ नए इलाकों में लगान व्यवस्था तय करने का समय आया तो दूसरे मत वाले लोगों की जीत हुई।

रिकार्डो के अनुसार (उनकी पुस्तक का नाम है ''प्रिन्सिपल्स ऑफ पॉलिटिकल इकॉनोमी'' जो सन् 1821 में प्रकाशित हुई थी) जमींदार खुद उत्पादन के लिए कुछ नहीं करता है। मजदूर अपना श्रम लगाता है, पूंजीपति अपनी पूंजी लगाता है, उद्यमी उद्योग संगठन में सक्रिय होता है। जमींदार जमीन के लिए जो किराया पाते हैं, वह सीमित मात्रा में उपलब्ध जमीन पर उनके एकाधिकार की वजह से उन्हें मिलता है। उनके विचार में उत्पादन में भूस्वामियों का कोई सकारात्मक योगदान नहीं होता है इसलिए शासन को उनकी आय पर कर लगाना चाहिए। उचित तो यह होता कि जमीन पर उनके मालिकाना अधिकार को समाप्त कर भाासन सारी जमीन अपने हाथ में ले ले और उसे उद्यमी लोगों को उपलब्ध कराए।

गतिविधि – रिकार्डो के मत के अनुरुप बड़े एवं सम्पन्न किसानों की आय पर वर्तमान समय में कर लगाना क्या उचित होगा? सोचें ।

रैयतवारी व्यवस्था

एक नई व्यवस्था दक्षिण और पश्चिम भारत में रैयतवारी व्यवस्था के नाम से शुरू की गई। इसमें किसानों के साथ सीधा करार किया गया। इन इलाकों में परंपरागत रूप से जमींदार नहीं होते थे इसलिए कंपनी सरकार ने किसी नए व्यक्ति को जमींदार बना कर स्थापित करने की जगह सीधा किसानों से ही संबंध स्थापित किया। इस व्यवस्था में लगान उपज के आधार पर तय हुआ। पहले जमीन की गुणवत्ता देखी गई, फिर पिछले कुछ वर्षों की उपज का औसत निकाला गया, उसमें किसानों की खेती पर होने वाले खर्च को काट कर जो

बचता था उसका 50 प्रतिशत लगान के रूप में तय कर दिया गया। मगर इसे स्थायी नहीं बनाया गया। प्रत्येक 30 वर्ष बाद लगान की राशि में बदलाव किया जाना तय किया गया। इस व्यवस्था में किसानों को जमीन का मालिक माना गया था।

महालवारी व्यवस्था— पंजाब, दिल्ली एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों पर जब अंग्रेजी सरकार का कब्जा हुआ तो वहां उन्होंने सीधा किसानों की जगह गाँव या काफी बड़े जमीन मालिकों या परिवारों जिन्हें महाल कहा जाता था, को इकाई माना और उनके साथ लगान वसूली का करार किया। इस व्यवस्था को 'महालवारी व्यवस्था' के नाम से जाना जाता है। इसमें बड़े परिवार या गाँव प्रमुख गाँव भर से लगान इक्ट्ठा कर सरकार तक पहुंचाते थे। लगान की मात्रा तय करने का तरीका यहां भी रैयतवारी व्यवस्था वाला ही था – उपज से खेती के खर्च को घटा कर जो बचता था उसका लगभग 50 प्रतिशत लगान तय कर दिया गया । इसे मात्र 30 वर्षों के लिए ही लागू किया गया था।

महाल—पंजाब, हरियाणा, पश्चिम उत्तर प्रदेश के इलाके में बड़े गांव या कुछ गावों के समूह को महाल कहा जाता था।

इन तीनों प्रकार की भूमि व्यवस्था को अगर अंग्रेजों के शासन वाले भारतीय क्षेत्र में प्रसार के तहत देखें तो यह निष्कर्ष निकलता है— कुल कृषि योग्य भूमि में 19 प्रतिशत स्थायी बंदोबस्त के अन्तर्गत था। 29 प्रतिशत महलवारी व्यवस्था के तहत एवं 52 प्रतिशत रैयतवारी व्यवस्था में आता था। इसे आप मानचित्र से भी देख सकते हैं।

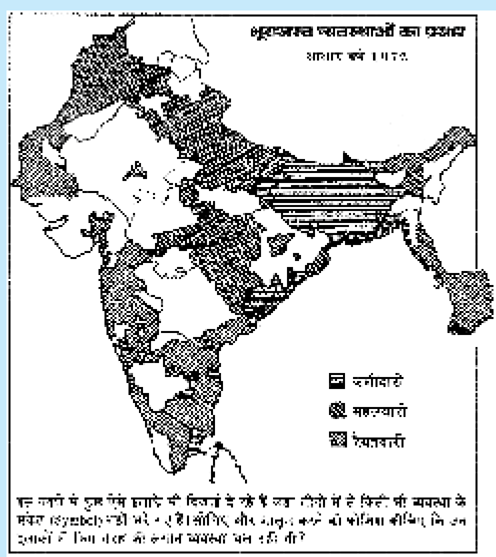

नई लगान व्यवस्थाओं का ग्रामीण जीवन पर प्रभाव– सबसे पहली बात तो यह कि स्थायी बंदोबस्त से लगभग आधे पुराने जमींदारों की जमींदारी उनके हाथ से चली गई क्योंकि उन्होंने तय समय पर लगान जमा नहीं किया था। दरअसल उनके लिए किसानों से लगान के लिए ज्यादा जोर जबरदस्ती करना संभव नहीं था। किसानों के साथ उनके काफी पुराने संबंध थे। दोनों में भावनात्मक स्तर पर एक संबंध बना होता था। इससे फसल खराब होने या अकाल की स्थिति में लगान के लिए दबाव बनाना असम्भव होता था। आपने यह भी देखा है कि नई व्यवस्था में जमीन का मालिक किसान या जमींदारों को बना दिया गया। इससे लगान समय पर जमा करने के लिए इसे बेचने या बंधक रखने का चलन शुरू हो गया। इससे गाँवों में महाजन के रूप में एक प्रभावी समूह आ गया। इन लोगों के द्वारा जमीन के एवज में धन दिया जाता था। धीरे–धीरे यह समूह गाँवों में सबसे महत्वपूर्ण हो गया क्योंकि गाँवों के कई किसान और जमींदार इनसे कर्ज लेते थे। लगान की दर तीनों ही व्यवस्थाओं में काफी ऊँची थी। इसलिए किसान खेती में सुधार के लिए कोई प्रयास कर पाने में भी असमर्थ हो गए। रैयतवारी और महालवारी में तो किसान खेती में सुधार का प्रयास भी नहीं करना चाहते थे क्योंकि उन्हें पता था कि अगर वे ऐसा करेंगे तो अगली बार उनके लगान की दर बढ़ा दी जाएगी। अंग्रेज सरकार को तो केवल लगान से मतलब होता था, उन्हें खेती में सुधार की कोई चिंता नहीं रही। इस तरह तीनों ही व्यवस्था ने गाँवों के किसानों और जमींदार दोनों को एक तरह से बर्बाद कर दिया। मजबूत हुए तो महाजन या नए जमीन के मालिक जिन्होंने पुराने जमींदारों की जगह ले ली थी।

1875 का दक्कन विद्रोह

महाराष्ट्र के पूणा और अहमदनगर जिला में 1875 में किसानों के गुस्से ने बड़े पैमाने पर उपद्रव भड़काया। इन क्षेत्रों में रैयतवारी प्रणाली लागू थी। यहाँ किसान लगान की ऊँची दर के कारण परेशान थे। समय पर लगान चुकाने के लिए वे महाजनों से ऊँचे ब्याज दर पर पैसा लेते थे और इस तरह वे उनके चंगुल में जीवन भर के लिए फँस जाते थे। इस विद्रोह में किसानों ने महाजनों को अपना निशाना बनाया। उनके

खिलाफ अहिंसक तरीके से अपना विरोध शुरू किया। महाजनों का सामाजिक बहिष्कार हुआ उनके घरों पर हमला करके उनकी लाल बही (दस्तावेज) को लूटा गया और उसे सामूहिक रूप से जलाया गया। दरअसल उस बही में ही किसानों को दिये गए धन और उसका ब्याज का पूरा हिसाब किताब होता था। इसलिए किसानों ने उसे जलाया। यह एक तरह से महाजनों के चंगुल से उनके मुक्त हो जाने को सूचित कर रहा था। धीरे–धीरे महाजनों ने उन क्षेत्रों को छोड़कर चले जाना ही बेहतर समझा। इस तरह यह विद्रोह महाजनों के शोषण के विरुद्ध किया जाने वाला अहिंसक संघर्ष के रूप में जाना गया।

बाजार के लिए नई फसलों का उत्पादन– नई लगान व्यवस्था के साथ–साथ अंग्रेजी सरकार के अधिकारियों ने अपनी जरूरत के हिसाब से अलग तरह की फसलों के उत्पादन के लिए भी किसानों को प्रोत्साहित किया। ये आम खाद्य फसलों से अलग थीं जिनसे कारखानों में दूसरी वस्तुएं तैयार की जाती थीं। उदाहरण के लिए बंगाल में किसानों को पटसन (जूट), असम में चाय, बिहार में नील, शोरा और अफीम, मध्य व पश्चिम भारत में कपास, इत्यादि फसलों का उत्पादन करने को कहा गया। इन फसलों का किसानों या गांव के लोगों के लिए कोई विशेष इस्तेमाल नहीं था। मगर बाजार में इनकी कीमत ज्यादा होती थी और किसान इसे बेच कर नकद पैसे प्राप्त कर सकते थे। इसलिए इन्हें नकदी फसल भी कहा जाता है। कंपनी को इन फसलों की आवश्यकता अपने देश के कारखानों में कच्चे माल के रूप में थी और कुछ अन्य फसलों को वे दुनिया के अलग देशों में बेच कर अच्छा मुनाफा कमाते थे।

सभी तरह के नकदी फसलों में अंग्रेजों का ज्यादा जोर नील के उत्पादन पर था। बहुत पहले से ही समूचे यूरोप में कपड़ों को रंगने के लिए भारतीय नील की मांग थी। इसके व्यापार में लगे अंग्रेज व्यापारियों को इससे काफी मुनाफा होता था। इसलिए वे किसानों को अग्रिम धन देकर सहायता भी करते थे। आगे चलकर जब वे शासक बन गए तो इसके उत्पादन को बढ़ाने के लिए किसानों को डराना, धमकाना या लोभ–लालच भी देना शुरु कर दिया। कई

© BSTBPC WEB COPY NOT TO BE PUBLISHED

अंग्रेज अधिकारी एवं व्यापारियों ने तो स्वयं ही जमींदारों से जमीन पट्टे पर लेकर उसमें मजदूरों से नील की खेती करवाना शुरू कर दिया।

नकदी फसल ऐसा कृषि उत्पाद होता है जिसे खेतों से सीधे व्यापारियों द्वारा खरीद लिया जाता था। जैसे गन्ना, नील, तम्बाकू, अफीम, इत्यादि।

नील की खेती की समस्याएँ– नील की खेती किसानों के लिए फायदेमंद नहीं थी। मगर उन्हें अपनी जमीन के एक बेहतर हिस्से पर इसकी खेती करनी पड़ती थी। इसके लिए उन्हें सरकारी अधिकारियों द्वारा बाध्य किया जाता था। किसानों की प्राथमिकता हमेशा से ही खाद्य फसलों का उत्पादन होता था। इससे उन्हें न केवल उस साल के लिए अनाज मिलता था बल्कि बुरे दिनों के लिए वे उसमें से कुछ बचा के भी रख लेते थे। नील की खेती धान के मौसम में ही की जाती थी और अंग्रेज बगान मालिक किसानों से जबरन हल–बैल लेकर पहले अपने नील की बोआई करवाते थे। इससे धान के फसल में देर हो जाती थी। इसके अलावा जिस खेत में नील की खेती होती थी उसमें फसल कटने के बाद उस साल कोई और फसल नहीं उगायी जा सकती था। इस सबका असर यह होता था कि किसानों के पास अनाज की कमी हो जाती थी। जब कभी भी सूखा या बाढ़ के कारण फसलों का उत्पादन कम होता था तो किसानों के पास पहले का रखा अनाज नहीं होता था। ऐसे में वे या तो महाजनों से कर्ज लेते थे या भूखे रहते थे।

नील दर्पण– नील की खेती के कारण किसानों को जो कठिनाई हो रही थी उसे उस समय के एक बंगाली नाटक ''नील दर्पण'' में बड़े अच्छे तरीके से दिखाया गया है। इस पुस्तक के लेखक दीन बंधु मित्र थे। 1860 में यह पुस्तक बिना किसी लेखक के नाम के छपी थी ताकि अंग्रेजों के गुस्से को उन्हें झेलना नहीं पड़े। इसमें उसकी खराब नीति का बखान किया गया था। इस पुस्तक का अंग्रेजी में अनुवाद माइकेल मधुसूदन दत्त ने किया। इस नाटक में नील किसानों की दुर्दशा वास्तविक रूप में सामने आई है–

एक नील किसान गुलुक चौधरी (नाटक का पात्र) अपने साथी किसान से कहता है

कि ''मैं अब नील की खेती नहीं करूँगा, चाहे इसके लिए मुझे जेल ही क्यों न जाना पड़े। भीख मांग कर खा लूँगा। अगर सरकार ने ज्यादा तंग किया तो गाँव को छोड़ दूँगा, लेकिन अब नील की खेती नहीं करूँगा''।

नील किसानों का विद्रोह– बंगाल में नील की खेती बड़े पैमाने पर करवायी जा रही थी। इससे वहां के किसान बहुत दुखी थे। बार–बार पड़ने वाले अकाल व भुखमरी से परेशान किसानों ने विद्रोह कर दिया। वे नील की खेती करने से मना करने लगे। साथ ही उन्होंने बगान मालिकों को लगान चुकाना भी बन्द कर दिया। औरतों ने पुरुषों के साथ मिलकर नील की फैक्ट्रियों पर जहाँ नील बनाया जाता था (इसे आप चित्र में देख सकते हैं), पर हमला बोल दिया। इस संघर्ष में भारतीय जमींदारों ने भी किसानों का साथ दिया। वे अपने क्षेत्र में अंग्रेज बगान मालिकों को बर्दाश्त नहीं कर पा रहे थे। जैसे–जैसे विद्रोह फैलने लगा बंगाल के पढ़े–लिखे लोगों के द्वारा अखबारों और अन्य पत्र–पत्रिकाओं में लेख लिख कर इसका भरपूर समर्थन किया गया। इन लेखों ने अंग्रेजी सरकार को नील की खेती की समस्या से परिचित कराया। ''नील दर्पण'' का उदाहरण आपके सामने है। अखबारों में अंग्रेजी बगान मालिकों के जोर जबरदस्ती एवं किसानों पर किए गए अत्याचार के विषय में खूब लिखा गया। इस विद्रोह की एक खास बात यह रही कि सरकार ने इसे दबाने का प्रयास नहीं किया। धीरे–धीरे बंगाल के कुछ इलाकों से इसकी खेती पूर्णतः समाप्त हो गई।

बिहार और नील की खेती– बिहार में नील की खेती मुख्य रूप से उत्तर बिहार के चम्पारण, और मुजफ्फरपुर के इलाकों में की जाती थी। यहां अंग्रेज बगान मालिकों ने कुछ बड़े जमींदारों से जमीन पट्टे पर प्राप्त किये और नील की खेती शुरू करवाई। जमींदारों ने भी अपने कर्ज के बोझ को कम करने के लिए खुशी से अपनी जमीन अंग्रेजों को दे दी। इन दो क्षेत्रों के अलावा भागलपुर और शाहाबाद क्षेत्र में भी नील की खेती बड़े पैमाने पर शुरू हुई। नील के अलावा अंग्रेजों ने इस इलाके में अफीम, पटसन और शोरा नामक नकदी फसलों का उत्पादन भी बड़े पैमाने पर शुरू करवाया। वर्त्तमान गया जिला अफीम उत्पादन में तत्कालीन बंगाल प्रान्त में प्रथम स्थान पर था।

नील का उत्पादन कैसे होता था?

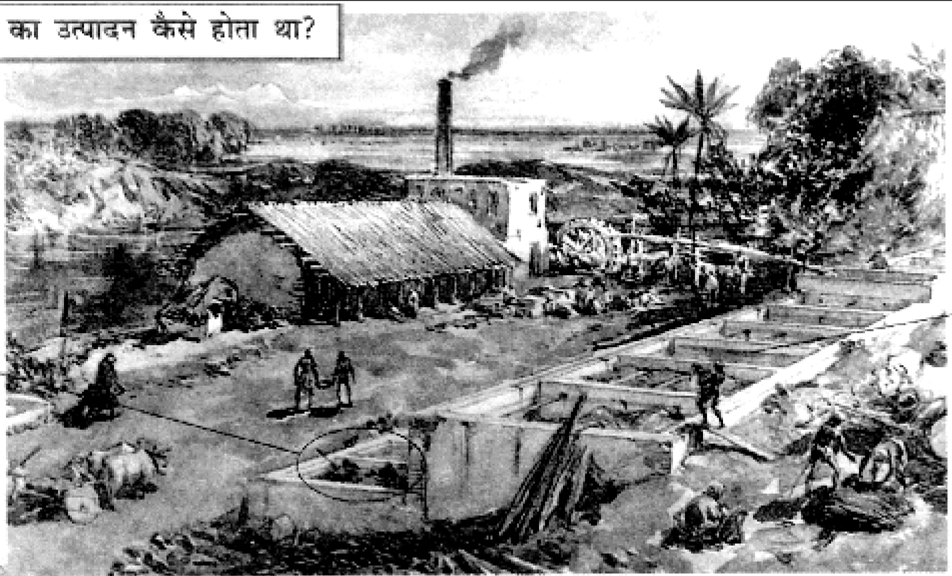

चित्र 10 – नील के खेतों के पास स्थित नील का एक कारखाना, विलियम सिम्पसन का चित्र, 1863.

नील गाँव आमतौर पर बागान मालिकों की फैक्ट्रियों के आस-पास ही होते थे। कटाई के बाद नील के पौधों को कारखाने में स्थित **वैटस** (हौद) में पहुँचा दिया जाता था। रंग बनाने के लिए 3 या 4 कुंडों की जरूरत पड़ती थी। प्रत्येक हौद का अलग काम था। नील के पौधों से पत्तियों को तोड़कर पहले एक कुंड में गर्म पानी में कई घंटों तक डुबोया जाता था (इस हौद को किणवन या स्टीपर कुंड कहा जाता था)। जब पौधे किण्वित हो जाते थे तो द्रव्य में बुलबुले उठने लगते थे। अब सड़ी हुई पत्तियों को निकाल दिया जाता था और द्रव्य को एक और हौद मे छान दिया जाता था। दूसरा हौद पहले हौद के ठीक नीचे होता था।

दूसरे हौद (बीटर वाट) में इस घोल को लगातार हिलाया जाता था और पैडलों से खंगाला जाता था। जब यह द्रव्य हरा और उसके बाद नीला हो जाता था तो हौद में चूने का पानी डाला जाता था। धीरे-धीरे नील की पपड़ियाँ नीचे जम जाती थीं और ऊपर साफ द्रव्य निकल आता था। द्रव्य को छानकर अलग कर लिया जाता था और नीचे जमी नील की गाद – नील की लुगदी – को दूसरे कुंड (निथारन कुंड) में डाल दिया जाता था। इसके बाद उसे निचोड़कर बिक्री के लिए सुखा दिया जाता था।

चित्र 11 – नील के पौधों को हौद तक औरतें ही ढोकर लाती थीं।

चित्र 12 – हौद में घोल हिलाने वाला

यहाँ खड़ा नील मज़दूर हौद में पड़े घोल को हिलाने के लिए इस्तेमाल होने वाला पैडल लिए खड़ा है। इन मज़दूरों को 8 घंटे से भी ज़्यादा समय तक कमर तक भरे नील के घोल में खड़े रहना पड़ता था।

वाट – एक किणवन अथवा संग्रहण पात्र

चित्र 13 – बिक्री के लिए नील तैयार है।

यहाँ आप उत्पादन की आखिरी अवस्था को देख सकते हैं। दबाकर साँचों में डाल दी गई नील की लुगदी को काटकर मज़दूर उन पर मुहर लगा रहे हैं। पीछे वाले हिस्से में एक मज़दूर इन टुकड़ों को सुखाने के लिए ले जा रहा है।

चित्र 2

बिहार में नील की खेती दो तरीकों से की जाती थी– 'जीरात' और 'असामीबार'। जीरात में सीधी अपनी देख–रेख में अंग्रेज बगान मालिक मजदूरों से खेती करवाते थे। असामीबार में बगान मालिक रैयतों को उनके स्वयं की जमीन पर नील की खेती करने के लिए बाध्य करते थे। कुछ रैयतों को तो अंग्रेजों ने नील खेती के लिए आरक्षित तक कर लिया था। अंग्रेज उन्हें बस खेती का खर्च देते थे। कृषि कार्य में लगने वाले श्रम के बदले उन्हें काफी कम मजदूरी दी जाती थी। ''तीन कठिया'' प्रणाली इसी के अन्तर्गत चम्पारण में प्रचलित किया गया। इसके अन्तर्गत किसानों को अपनी जमीन में तीन कट्ठे प्रति बीघा की दर से नील की खेती करनी पड़ती थी। इसी के विरोध में महात्मा गाँधी ने चम्पारण में सत्याग्रह की शुरुआत की। इसके विषय में आप आगे के पाठों में पढेंगे। इन दोनों प्रकार की खेती में किसान शोषित होते थे।

नई भूराजस्व व्यवस्थाएं अंग्रेजों द्वारा भारत में अपने साम्राज्य निर्माण की दिशा में उठाए गए सबसे महत्वपूर्ण कदमों में से एक थी। इसने भारत में अंग्रेजी शासन को स्थायित्व प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन व्यवस्थाओं ने भारत के परम्परागत भूमिपतियों तथा आम किसानों दोनों में कई तरह के असंतोष को जन्म दिया, जिसकी अभिव्यक्ति उन लोगों द्वारा समय–समय पर किए गए विद्रोह के रूप में देखने को मिलता है।

अभ्यास

आइये फिर से याद करें–

1. सही विकल्प को चुनें।

(i) बिहार में अंग्रेजों के समय किस तरह की भूमि व्यवस्था अपनाई गई?

(क) स्थायी बंदोबस्त (ख) रैयतवारी व्यवस्था

(ग) महालवारी व्यवस्था (घ) इनमें से कोई नहीं

(ii) अंग्रेजों के आने के पहले भूमि का मालिक कौन होता था?

(क) जमींदार (ख) व्यापारी (ग) किसान (घ) राजा

(iii) रैयतवारी व्यवस्था में जमीन का मालिक किसे माना गया?

© BSTBPC WEB COPY, NOT TO BE PUBLISHED

(क) किसान (ख) जमींदार (ग) गाँव (घ) व्यापारी

(iv) अंग्रेजी शासन द्वारा भारत में अपनाई गई नई भूमि व्यवस्थाओं का प्रमुख उद्देश्य क्या था?

(क) अपनी आय बढ़ाना (ख) भारतीय गाँवों पर अपने शासन को मजबूत करना

(ग) व्यापारिक लाभ प्राप्त करना (घ) किसानों का समर्थन प्राप्त करना

2. निम्नलिखित के जोड़े बनाएँ

(क) महालवारी	(क) 1793
(ख) नील दर्पण	(ख) बिहार
(ग) नकदी फसल	(ग) दीनबंधु मित्र
(घ) स्थायी भूमि व्यवस्था	(घ) पंजाब

आइए विचार करें –

(i) अंग्रेजी शासन के पहले भारतीय भूमि व्यवस्था एवं लगान प्रणाली के विषय में आप क्या जानते हैं?

(ii) स्थायी बन्दोबस्त की विशेषताओं को बताएँ।

(iii) अंग्रेजी सरकार द्वारा बार–बार भूमि राजस्व व्यवस्था में किये जाने वाले परिवर्त्तनों को आप किस रूप में देखते हैं? अपने शब्दों में बताएँ।

(iv) अंग्रेजों की भूमि राजस्व व्यवस्था आज की व्यवस्था से कैसे अलग थी, संक्षेप में बताएं।

(v) नई राजस्व नीति का भारतीय समाज पर क्या असर हुआ।

(vi) नील की खेती की प्रमुख समस्याओं की चर्चा करें।

आइए करें देखें –

(i) अंग्रेजी राज के समय उत्पादित फसलों में से कौन–कौन आज भी उत्पादित होती है, वर्ग में सहपाठियों से चर्चा करें।

(ii) खेती करने के तौर–तरीकों में पहले की अपेक्षा आज किस तरह का बदलाव आया है? बुर्जूगों से पता करें।

© BSTBPC WEB COPY, NOT TO BE PUBLISHED